वीरप्रभुः पातु नः

राष्ट्रीय पर्व : दीपावली

आचार्य विद्यानन्द मुनि

प्रकाशक

कुन्दकुन्द भारती

18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067

राष्ट्रीय पर्व : दीपावली

लेखक : आचार्य विद्यानन्द मुनि

प्रकाशक : कुन्दकुन्द भारती न्यास, नई दिल्ली-110067

मुद्रक : काईज़न आफसैट, नई दिल्ली

संस्करण : 23 अक्टूबर, 2014 ई., 1000 प्रतियाँ

© प्रकाशक के पास सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति स्थल

कुन्दकुन्द भारती न्यास,
18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
दूरभाष : 26564510, 26513138

RASHTRIYA PARVA : DEEPAWALI
by **Acharya VIDYANAND MUNI**

Publisher : Kund Kund Bharti Trust, 18-B, Special Institutional Area, New Delhi-110067 (India)

Edition : 23rd October, 2014, 1000 Copies

वीरप्रभुः पातु नः

राष्ट्रीय पर्व : दीपावली

आकाश में झिलमिल-झिलमिल जगते तारे और धरती पर जगमग-जगमग जलते दीप, मानों पृथ्वी और आकाश अपना रूप संवार रहे हों अथवा दोनों किसी विशेष आनन्द में नहा रहे हों। घरों, गलियों, बाज़ारों और हाट-दुकानों पर दीपक-मालाएँ स्नेह पी-पीकर नाच रही हैं। सजे-सँवरे हुए बालक, युवा और वृद्ध नगर शोभा देखने निकल रहे हैं। श्वेत पताकाओं से अलंकृत घरों और मन्दिरों की शोभा किसी विशेष बात की सूचना दे रही है। आज स्वर्ग के देव पृथ्वी पर उतरे हैं। वे भगवान् महावीर की निर्वाणपूजा के लिए एकत्र हो रहे हैं, क्योंकि यह पर्व भगवान् वर्द्धमान की निर्वाण-पूजा का दिन है। 'निर्वाण' का अर्थ है मुक्ति। जीवन की सबसे उत्कृष्ट उपलब्धि। संसार की चौरासी लाख योनियों के भवचंक्रमण से छुटकारा। वह प्राप्तव्य, जिसके लिए लोग तप तपते हैं, महाव्रत लेते हैं और वीतराग होकर अनेक परिषह सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर स्थिर गति से बढ़ते हैं। वही निर्वाण की प्राप्ति आज भगवान् को हुई है। जिन-भक्तों ने घरों के समक्ष 24 दीप जलाकर तीर्थंकरों की आत्मज्योति का जैसे दर्शन किया है। ज्योति को स्नेह (तैल) देकर उजागर करनेवालों के मन भगवान् की अनन्त

ज्ञानमयी मुद्रा को अपने में प्रतिष्ठित कर रहे हैं। आज भगवान् को 'निर्वाण मोदक' चढ़ाने की उमंग में सबके मन मुदित हो उठे हैं। अहो ! यह कितने आनन्द की वेला है। जिनका जीवन ज्ञान, चरित और प्रकाश देता रहा, उनकी निर्वाणविभूति से श्रद्धा ने मानो शृंगार किया है। लोगों के हृदय गन्धर्व-विद्यालयों के स्नातक होकर निकल रहे हैं। उमंग ने आकाश पर उदयसुन्दरी की आभा लगा दी है।

'अद्य दीपोत्सवदिने वर्धमानस्वामी मोक्षं गतः'–(आलाप-पद्धति, पृष्ठ 169) आज वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गये, इस स्मृति से भव्य भावुकों का मन अतीत के स्वर्णकाल से क्षण भर के लिए ऐक्य स्थापित कर लेता है। वह डूब जाता है भावना के समुद्र में और सोचने लगता है– अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व हमारे आराध्य के चरणकमल इसी पृथ्वी पर संचार करते थे, उनकी समवसरण सभा में बैठे गणधर गौतम दिव्य ध्वनि को अक्षरात्मकता देकर लोक के लिए बोधगम्य कर रहे थे, आज उसी तीर्थंकर परमदेव की पवित्र निर्वाणपूजा तिथि है।

पूर्वजों ने अपनी जीवन-परम्परा में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दीपक की लौ में उस दिव्य निर्वाण-ज्योति को जीवित रखा है। वर्ष, युग और शताब्दियों के बाद सहस्राब्दियाँ बीतीं किन्तु निर्वाणज्योति आज भी उसी जगमग द्युति के साथ जल रही है, दीपकों में और श्रद्धासिक्त हृदयों में। समय की आँधियाँ इसे बुझा नहीं सकीं और विस्मृति के 'मोर' इसकी वर्तिका को मन्द नहीं कर सके। अमन्द आनन्दमयी यह प्रभा प्रभावना के सहस्र

स्नेहघृत पीकर साधकों के हृदय में अमर अक्षय दीप बन गई है। त्रिरत्न के शरावों में, दशलक्षणों की वर्तियों में, चरित्र की अकम्प शिखा में कोटि-कोटि हृदयों के 'दीवट' पर यह निर्वाणज्योति सस्नेह मुस्करा रही है। श्रद्धा के आँच आँधियों को परास्त कर रहे हैं, अडिग विश्वास के छोर इसकी 'लौ' में लीन हो रहे हैं।

दीपोत्सव पर लोग अपरे घरों को बुहारते हैं, सफेदी पोतकर उन्हें उज्ज्वल बनाते हैं तथा दीपक जलाते हैं। इसका आत्मिक आशय यह है कि भगवान् के इस निर्वाण-स्मृति दिवस में लोगों को अपना शरीर रूपी घर बुहारना चाहिए। इसमें राग, द्वेष, काम, क्रोधादि का जो कूड़ा-कचरा है, उसे ज्ञान की बुहारी से निकाल बाहर करना चाहिए। आत्मशुद्धि की सफेदी पोतनी चाहिए और स्वच्छ हुए इस घर में ज्ञानोपयोग का दीपक जलाना चाहिए। मुँडेरों पर धरे हुए दीपक आत्मा के पीठ पर धरे जाने आवश्यक हैं। नहीं तो धुआँ उगलने वाले ये दीप जब भोर में ताराओं के समान निष्कांति हो जाएँगे तब रात भर जलने का परिणाम मूल्य किस रूप में अंकित करोगे। 'दीपक से दीपक जलता है' इसे आत्म दीपक आलोकित कर सिद्ध करो। श्वासों की बाती में प्राणों के दीवट पर आत्मभुवन में 'सहस्रवाट' का ऐसा दीपक जलाओ जो सदा के लिए अंधियारी रातों का आगमन निरस्त कर दे। आज के धनोपजीवी लोग इस 'धन्य' दिवस को 'धन' मान बैठे हैं। जो निर्वाण से धन्य है, उसे अकिंचन धन से धन्य मान बैठे हैं। मोक्ष लक्ष्मी के पूजन का दिन भौतिक लक्ष्मी की आराधना में लगा हुआ है, क्योंकि आज जीवन

के मानदण्ड बदल गये हैं। मनुष्य की सात्विक वृत्तियाँ भौतिक ऐश्वर्य की चकाचौंध में सम्यक्त्व को देख नहीं पा रही हैं। सहस्र दीपक जलाकर भी मानव आत्मप्रदेश में एक दीपक भी जलाना नहीं जानता। बाहर की कांति देखकर प्रसन्न होता है किन्तु भीतर प्रकाश करना भूल गया है। तप, त्याग और संयम के स्थान पर विलासी, परिग्रही और स्वच्छन्द हो गया है। इसलिए बाहर तो दीपकों का उजाला है परन्तु भीतर आत्मा में 'दीया तले अंधेरा' है। यदि दीपावली के दिन अभ्यन्तर दीपक की ओर मानव का ध्यान रहे तो बाहर-भीतर प्रकाश आलोकित हो उठे।

दीपक का काम प्रकाश विकीर्ण करना है। प्रकाश का पर्याय है आलोक। लोकने (देखने) की शक्ति प्रकाश से ही उपलब्ध होती है। प्रत्येक मानव कुछ देखना चाहता है। मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति सम्भव करने के लिए पृथम सम्यक्त्व–विशिष्ट 'दर्शन' का स्थान है। नेत्रों की 'लोचन' संज्ञा है जिसका अर्थ भी 'देखना' ही है। यह अवलोकन, लोचन और वस्तुदीपन प्रकाश के सहयोग से ही साध्य है। अन्धकार घनीभूत होने पर, दीपक बुझ जाने पर और आंखें मूँद लेने अथवा नष्ट हो जाने पर जागतिक सौर-प्रकाश प्राप्त करना अशक्य हो जाता है। इसलिए संसार अन्धकार-निवारण के लिए दीपक जलाता है। यह दीपक बाहर के तिमिर को हटाता है और प्रकाश देता है। इस दीपक को देखकर प्रसन्नता इसलिए होती है कि आत्मा प्रकाशमय और ज्ञानमय है। आत्मधर्म का सधर्मी होने से दीपक आनन्द-दीपक है। कवि बिहारी ने कहा है– 'ज्यों बड़री

अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत' जैसे बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर आँखों को सुख मिलता है, इसी प्रकार अपने सगोत्र, सधर्मी और समशील को देखकर चित्त प्रमुदित हो जाता है। इसका आशय यह है कि भीतर का प्रकाश ही हमें बाहर प्रकाश करने की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रकाश से आह्लादित होने का यही अर्थ है।

यह दीपक मिट्टी के पकाये हुए शराव का नाम है। इसमें गुण और स्नेह (रूई और तेल) पूरित किये गये हैं। इस प्रकार मिट्टी के अधरों पर चैतन्य का सम्पर्क हुआ है और उस चेतन का स्पर्श पाकर जड़ मिट्टी नाचने लगी है। क्या इसी प्रकार हमारा आत्मजुष्ट शरीर नहीं है? पृथिव्यादि परमाणु-पुंजों को गर्भ के 'आवे' में परिपक्व किया गया है और रस-रक्त-शुक्र इत्यादि स्नेह पदार्थ सींचकर इसका स्कन्ध-देश निर्माण किया गया है, इसे घनीभूत किया गया है। आत्मा की 'लौ' इसके ओठों से लगी हुई है। इस प्रकार यह शरीर दीपक जल रहा है, प्रकाश बांटने के लिए और स्वयं प्रकाशित होने के लिए। कहा भी है–

''जेहि विधि माटी घड़े कुंभारा।
तेहि विधि रचित सकल संसारा॥''

यह कर्मरूपी कुम्भकार शरीररूपिणी मिट्टी को निरन्तर (कर्मानुसार) घड़ रहा है और इसलिए विविध कर्मप्रचोदना से चौरासी लाख योनियों का यह विराट विकट भवारण्य संकुल हो रहा है। इस शरीर में जो आत्मरूप चेतन विराजमान है वही वास्तविक दीपक है जो मोक्ष के मार्ग को दिखा सकता है, कोरी मिट्टी से बना हुआ दीपक तो

बाहर-बाहर प्रकाश फैला सकता है, अतः शाश्वत प्रकाश प्राप्त करने के लिए आत्मदीपक की लौ को ऊँचा उठाना चाहिए। दीपावली की रात्रि में जैसे लक्ष-कोटि दीपकों की पंक्ति जगमगाने लगती है, उसी प्रकार कोटि-कोटि मनुष्यों के हृदय में आत्मज्योति जगमगा रही है, अकम्प और अबुझ। किन्तु जैसे कोई अजान व्यक्ति निकट रहते हुए भी परिचय के अभाव में उस वस्तु से अनभिज्ञ ही रह जाता है, उसी प्रकार अपने भीतर आत्मदीपक विद्यमान होते हुए भी अनात्मज्ञ को प्रतीति नहीं होती। वह अनात्मज्ञ अपने पास मणि रखते हुए भी उसको पहचान नहीं पाता। कथा है कि किसी विदेश जाते पति को उसकी पत्नी ने चार मधुर मोदक बनाकर पाथेय के लिए दिये और उनके भीतर बहुमूल्य 'लाल' रख दिये। किन्तु उसे पता नहीं था और मार्ग में किसी अत्यन्त भूखे व्यक्ति को देखकर उस दयार्द्रहृदय ने वे मोदक उसे दे दिये। इस प्रकार उसकी अनभिज्ञता से वे 'लाल' भी लड्डुओं के साथ चले गये। इस शरीर रूपी मोदक में 'लाल' रूप आत्ममणि छिपी हुई है। उसका ज्ञान न रखने से कालभिक्षु को लोग शरीरसहित मणियाँ दे रहे हैं। परन्तु शरीर के साथ, जो वास्तव में काल का भोग है, हम भीतर छिपी हुई रत्नराशि भी दे बैठते हैं, यह ज्ञान ही बहुतों को नहीं है। किसी कवि ने ठीक इसी अवसर के लिए लिखा है–

''सबके पल्ले लाल, लाल बिना कोई नहीं।
यातें भयो कंगाल, गांठ खोल देखी नहीं॥''

गाँठ खोलकर उस मणि को, जो रात-दिन अपने पल्ले से बँधी हुई है, अपने ही अंचल में है, देखने वाले विरले ही होते

हैं। शेष तो अपनी सम्पत्ति से अनजान यों ही पछताते-पछताते कंगाल ही चले जाते हैं। इस आत्ममणि के अक्षय प्रकाश की खोज करना ही जीवन का उद्देश्य है। जो इसे ढूंढ़ लेता है, मालामाल हो जाता है और जिसे इसकी प्राप्ति नहीं होती वह गाँठ में रुपया होने से अनभिज्ञ के समान कंगाल ही मर जाता है। यह मृत्यु उसकी अपमृत्यु है और इसी के परिणामस्वरूप वह बार-बार जन्मता है और मरता है। कवि 'बच्चन' ने भवसंक्रमण के इस रहस्य को कविता की भाषा में लिखा है– 'दीप का निर्वाण फिर-फिर, नेह का आह्वान फिर-फिर'। जब दीपक में स्नेह निश्शेष हो जाता है, वह बुझ जाता है किन्तु दीपक की बाती पर से उड़ी हुई 'लौ' फिर किसी स्नेहगुणपूरित शराव के मुख पर अपना अस्तित्व व्यक्त करने के लिए मचलती रहती है और जैसे ही कर्म की उदय शलाका जलने के लिए तैयार शराव (दीपक) के मुख पर छुआ दी जाती है, वह पुनर्जन्म ग्रहणकर फिर से अन्धकार निगलने और प्रकाश उगलने लगता है। 'शान्ति की शपथ' में कवि ने जैसे इसी स्थिति से प्रेरित होकर लिखा है–

''फूल बनते खाद, फिर से
खाद में गुल खिल रहे हैं
मृत्यु जीवन और जीवन
मृत्यु में घुल-मिल रहे हैं
नाश को निर्माण का, निर्बाध
रूपक छल रहा है
प्रलयसरिता के तटों पर
सृजन का क्रम चल रहा है।''

दीपकों के जीवन और मरण की यह गाथा रूपक

होकर प्राणियों के साथ लागू हो रही है। मिट्टी के शराव का बुझना और जलना निरन्तर चालू है। प्रकाश की खोज में कदम बढ़ाते हुए मानव ने अपनी अन्तःसंज्ञा को ही 'लौ' के रूप में बाहर प्रतिष्ठित किया है। दीपावली के दिन पंक्तिबद्ध दीपकमाला हमें संकेत करती है निरन्तर प्रकाशमय होने के लिए: तेज, दीप्ति, कान्ति और उज्ज्वलता को अपनाने के लिए। क्षण-क्षण जलता हुआ, न्यून होता हुआ स्नेह पुकार-पुकार कर कहता है– मुझे जलती हुई यह 'लौ' पिये जा रही है। काल अन्तर के तत्त्वों को समाप्त करने में लगा हुआ है। जीवनाधर बादल के अन्तःकरण में बिजली के तार बिछे हुए हैं। जब तक आयु का सत्र चालू है, इस 'ज्ञान' के पाठ्यक्रम को पूर्ण कर संपूर्ण सिद्धियों का दोहन करना अभीष्ट है, क्योंकि

'ज्ञानेन पुंसः सकलार्थसिद्धिः।'

ज्ञान से मनुष्य को सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि होती है।

यह ज्ञान प्रकाश का ही नामान्तर है। जब आयु का 'योग' समाप्त हो जाएगा, शाला से छुट्टी मिल जाएगी। फिर सत्र को चालू रखना सम्भव नहीं– **'नहि अत्यायुषः सत्रमस्ति'**। इसलिए स्नेहपूर्ण दीपक की बाती पर लगी हुई 'लौ' सम्पूर्ण तैल को जलाकर शराव में उतर कर बत्ती को खाने के लिए घोराग्नि का रूप धारण करे– इससे पूर्व ज्ञान का दीप्तिमान आलोक सूर्य प्राप्त कर लो। फिर इस शराव के जलने, बुझने का अथवा टूटने का कोई भय नहीं। ऐसे कृतार्थ दीपक की उपमा महावीर भगवान् को प्राप्त है, जिनके निर्वाण पर भी आनन्द मनाया जाता

है और जैसे एक दीपक ने निर्वाण होते-होते कोटि-कोटि दीपों का मुख आभा से छुआकर ज्योतिर्मय कर दिया है, ऐसी दीपावली की यह रात्रि झिलमिल-झिलमिल जगर-मगर द्युति बिखेर रही है।

देखो, कितने शलभ इस ज्योति को पाने के लिए आ रहे हैं? प्रकाश की कितनी तीव्र पिपासा पतंगों के मन में है? छोटे-छोटे जीवों का प्रकाश से प्यार क्या शिक्षा ग्रहण करने की वस्तु नहीं? मक्खी कितना घिनौना जीव है किन्तु उसे भी अन्धकार प्रिय नहीं लगता। यदि किसी कक्ष (कमरे) में मक्खियाँ भिनभिना रही हैं तो उसे बन्द कर देखिए, सभी मक्खियाँ मीठे की थाली छोड़कर बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ने लगेंगी। अन्धेरा अकिंचन मक्खी को भी अच्छा नहीं लगता। किन्तु आश्चर्य है कि मनुष्य अनेक जन्मों तक अन्धकार में ही भटकता रहता है और आत्मा के सहस्रातिसहस्र 'वाट' के 'बल्ब' की रोशनी को देख नहीं पाता। मानो, दीपावली के दीपकों की कतार इसी हमारे अज्ञान पर हँस रही है। उनकी जलती देहों से हँसी के स्रोत बह रहे हैं। 'अरे !' वे कहती हैं, 'तुम हमें जलाते हो किन्तु आयु-कर्म के बन्धन में तुम भी तो ठीक हमारी ही तरह जल रहे हो। चेतो, जागो, सवेरा होने से पहले सावधान होकर अन्धकार को मिटाने का प्रयत्न करो। यदि अन्धकार मिटाने से पूर्व सवेरा हो गया, आयुकर्म पूर्ण हो गया, तो काल-समीरण फूँक मारकर बुझा देगा। यह 'लौ' जीवन की दीप्ति के रूप में जलती रहे तभी तक ठीक है, 'चिता की ज्वाला' बने– इससे पहले आत्मा के आलोक को पहचान लो। दीवाली की रात

पटाखों की आवाज में डूब रही है, जुए की कौड़ियों से खनखना रही है। इसे यों ही मत जाने दो। जीवन की ज्योति को कौड़ियों के मूल्य खो रहे हो? बारूद की ढेरी पर बैठकर स्वयं आग लगा रहे हो? वैसे ही, जैसे कोई मणियों को गुंजा के विनिमय में बेच दे। जीवन अजस्र जलने का नाम है, प्रकाश का पर्याय है। ज्योति की उपासना का समय है। इस भवाटवी में कितनी भ्रमान्धकार की गुफाएँ हैं, कितने विषम मार्गों से चलकर उद्देश्य के चूलों को छूना है, कितनी अजस्र चेतना इसमें आवश्यक है? क्या उसके स्वरों को पटाखों की आवाज में डुबा देना चाहते हो? क्या उसके लम्बे यात्रापथों से थक कर, जुआ खेलकर उस दूरी को जीत लेना सम्भव समझते हो? ऐसा कभी हुआ है? साहसिक यात्रियों ने एक-एक अगले कदम में सिद्धियों की समीपता अनुभव की है। उनकी लगन, चेतना, शक्ति और विश्वास प्रतिक्षण ज्योति के दर्शन करते बीते हैं। उनका प्रत्येक क्षण दीपावली होकर मुस्कुराता है। भटके हुए मनुष्यों को दीपों की पंक्तियाँ मुंडेरों से उतारकर आत्मा के अन्तराल में रख लेनी चाहिए और निर्वाण को गये हुए भगवान् तीर्थंकर परमदेव के पदचिह्नों को अनुसरण करते हुए मोक्षमार्ग पर दृढ़ता से कदम बढ़ाये चलना चाहिए।

पटाखे और द्यूत तथा मद्यपान तो व्यसन हैं, अन्धकार हैं। प्रकाश के सामने भी यदि यह अन्धकार खुलकर खेलता रहा तो इसका नाश कैसे होगा? तुम्हारे आत्मा में यदि इन लाखों दीपों से भी प्रकाश नहीं पहुँचा तो अन्धेरा कभी मिटने वाला नहीं। ये ज्योति के सन्देशवाहक तुम्हारे

घरों में, गलियों में रोशनी का संदेश (समाचार) लेकर आये हैं। बारह महीनों में एक बार आते हैं। जैसे मानसरोवर से राजहंस पक्षी उत्तरप्रदेश की नदियों के विशाल पाट पर लौटे हों। तुम यदि इन्हें मुक्ताफल नहीं दोगे, ये निराश लौट जायेंगे। आत्मा की अक्षय झोली में अमर मुक्ताफल हैं, उन्हें राजहंसों को देकर मुक्त हो जाओ। यह ज्योति की उपासना, संगति जीवन का सर्वोत्कृष्ट परिणाम है, आचार्य समन्तभद्र कहते हैं– 'चन्दन और चन्द्रमा की रश्मियाँ, गंगा का जल और मोतियों की मालाएँ इतनी शीतल नहीं जितनी निर्मल मुनियों की वाणी रूप किरणें।' इसमें मुनिवाणी को ज्ञानसोपानपद्धति बताया है।

ज्ञान (आलोक) की प्राप्ति से सिद्धियों की प्राप्ति होती है। जैसे घर में अन्धेरा होने से रखी हुई वस्तुएँ भी दिखाई नहीं देतीं, उसी प्रकार आत्मा में ज्ञानदीप जलाये बिना स्व-पर पदार्थ का ज्ञान नहीं हो पाता।

लोहे को पारद का सिद्ध रसायन स्वर्ण बनाता है किन्तु पारद और लोहे के मध्य में थोड़ी सी कागज की बाधा हो तो सुवर्ण होना संदिग्ध है। वैसे ही कषायों के पत्र लगे रहने पर आत्मा का सुवर्ण रूप में परिणत होना अशक्य है; अतः दीपावली को मात्र दीपकों की अवली तक सीमित न रखो, आत्मा की गहराई में उतर कर देखो, एक दीपक वहाँ भी जलाओ, जिसकी शिखा निर्वाण तक जलती रहे।

'हरिवंशपुराण' के 66वें सर्ग में भगवान् के इस निर्वाण-महोत्सव का हृदयहारी वर्णन निम्न श्लोकों में किया गया है–

जिनेन्द्रवीरोऽपि विबोध्य सन्ततं,
समन्ततो भव्यसमूहसन्ततिम्।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीम्
मनोहरोद्यानवने तदीयके॥ 15 ॥

....

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया
सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः
प्रदीपिताकाशतला विराजते॥ 18 ॥
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्
प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं
जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्॥ 19 ॥

अर्थात् सर्वज्ञता की प्राप्ति के पश्चात् भगवान् महावीर भव्य जनसमूह को सर्वतः तत्त्वोपदेश देते हुए 'पावा' नगरी को पधारे। वहाँ मनोहर नाम के उद्यानवन में विराजमान हुए और स्वाति नक्षत्र के उदित होने पर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के अन्तिम प्रहर में घातिय कर्मों का नाश कर निर्वाण प्राप्त किया। उस निर्वाण-महोत्सव को व्यक्त करती हुई 'पावा' नगरी दीपमालिकाओं से प्रकाशमान हो उठी। दीपों की पंक्तियाँ ऐसे शोभायमान थीं मानो आकाशतल ही उतरकर पृथ्वी पर आ गया हो। उसी समय से प्रतिवर्ष आदरपूर्वक भारत में दीपावली पर्व मनाया जाता है। इस दिन भगवान् जिनेश्वर की पूजा की जाती है।

महात्मा बुद्ध को शाक्यों में विहार करते हुए आनन्द ने भगवान् महावीर के निर्वाण की सूचना दी थी। महात्मा बुद्ध ने इसे आनन्दप्रद समाचार माना था। 'पाली' में लिखित वे पंक्तियाँ हैं– **'एकं समयं भगवो सक्केसु विहरति. .....तेन खो पन समयेन निग्गंठो नातपुत्तो पावायं आधुना कालगतो होति'**– आनन्द ने कहा कि निग्गण्ठ नाथपुत्र भगवान् महावीर का 'पावा' पुरी में निर्वाण हो गया है। भारत में प्रचलित संवत् में वीर संवत् प्राचीन है। यह कार्तिकी अमावस्या को समाप्त होता है और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होता है। वर्ष के आरम्भ की इस तिथि को 'वीर प्रतिपदा' कहते हैं ऐसा उल्लेख 'वामन पुराण' में है। 'जयधवला' ग्रन्थ के 'कषायप्राभृत' में लिखा है–

''कत्तियमास किण्ह पक्ख चौदस दिवस केवलणाणेण सह एत्थ गमिय परिणिव्वुओ वड्ढमाणो। अमावसीए परिणिव्वाण पूजा सयल देविहिं कया।''

–कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी को भगवान् वर्द्धमान निर्वाण गये और अमावस्या को समस्त देवों ने 'निर्वाणपूजा' की।

'निर्वाणपूजा' करते हुए श्रावकगण अत्यन्त पवित्रता और विनय भक्ति से भगवान् को 'मोदक' अर्पित करते हैं, जिसे 'निर्वाण लड्डू' कहते हैं। यह 'निर्वाणपूजा' भव्यजनों की आत्यन्तिक भक्ति की सूचक है। जैसे वीतराग तीर्थंकर परमदेव को मोदक, फल या नारियल भी अर्पित किया जा सकता है। बौद्धों में इस रात्रि को 'यक्षरात्रि' कहा गया

है। मुस्लिम कवि 'अब्दुल रहमान' का 'सन्देशरासक' नामक एक प्रसिद्ध रासकाव्य है। इसकी रचना का समय ईसा की बारहवीं शती है। अपभ्रंश भाषा के इस काव्य में दीपावली का सौन्दर्य'वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

''दितिय णिसि दीवालिय दीवय
णव ससिरे सरिस करि लीअय।
मंडिय भुवल तरुण जोइक्खिहिं
महिलिय दिंति सलाइय अक्खिहिं ॥ 176 ॥''

दीपावली की रात्रि में दीपक जगमग कर रहे हैं। दीपकों की कलिकाएँ नवीन बाल चन्द्रमा की रेखा के समान दीप्त हो रही हैं। सारा भुवनतल ज्योति से झिलमिला रहा है और महिलाएँ ताजा पारे हुए कज्जल को शलाका से आँखों में आँज रही हैं।

मान्यखेट के राष्ट्रकूट सम्राट् कृष्ण तृतीय के शासनकाल (सन् 959 ई.) में जैनाचार्य सोमदेवसूरि ने 'यशस्तिलकचम्पू' लिखा, जो संस्कृत-साहित्य की गद्यपद्यात्मक चम्पू रचनाओं में अपूर्व है। दीपोत्सव का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि दीपावली के समय में लोग घरों की लिपाई-पुताई में लगे हैं, उन पर श्वेत ध्वजाएँ उड़ा रहे हैं, आमोद-प्रमोद में निमग्न हैं, गीत-वाद्यों के स्वर मुखरित हो रहे हैं। घरों की छतों पर, मुँडेरों पर दीप-पंक्तियाँ प्रज्वलित कर वातावरण को ज्योतिर्मय कर रहे हैं।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत 'ज्ञानेश्वर' ने अपने ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी' में दीपावली का उल्लेख किया है। ज्ञानेश्वर

का समय ईसा की तेरहवीं (1260) शताब्दी है। 'आईन-ए-अकबरी' में अबुल फजल (1560) ने लिखा है कि दीपावली वैश्यों का सबसे बड़ा त्यौहार है। इस दिन रात्रि में दीपक जलाकर खूब रोशनी की जाती है।

इस प्रकार विविध जैन और जैनेतर ग्रन्थों में प्रसंगान्तःपाति दीपावली-वर्णन-विषयक कवित्त्व, ऐतिह्य गुँथे पड़े हैं जो दीपोत्सव की परम्परा को प्राचीन सिद्ध करते हैं। प्रकाश का यह पर्व अन्धकार को ही नहीं, हृदयगुहा में निविष्ट अज्ञान-अन्धकार को भी जला सके, तभी इसकी सार्थकता है। निर्वाण-पर्व को केवल भौतिक समृद्धि के उपाय-चिन्तन में ही व्यतीत करना 'दीपोत्सव' के अधिष्ठाता परमदेव की पवित्र स्मृति से दूर है। कर्म-धूलि दूर करने के स्थान पर अतिरिक्त कर्म-कषायों के पंक में सनना प्रमत्त योग का आमंत्रण करना है। दीपों की झिलमिल कान्ति में अपना पुनर्निरीक्षण करते हुए जीवन में पवित्रता प्रसूत करनेवाले उत्तम क्षमादि धर्मांगों को अपनाना वांछनीय है। नूतनता के गवाक्ष से झाँकने वाले आधुनिक शिक्षादीक्षित नयी पीढ़ी के युवा न केवल दीपोत्सव अपितु सभी धार्मिक पर्वोत्सवों के प्रति आस्थाशील हों, इसके लिए उनके संरक्षकों पर यह दायित्व-भार है कि वे पर्व-समयों की उज्ज्वल वास्तविकता से उन्हें परिचित कराएँ और द्यूतादि व्यसनों से परे रहते हुए पर्वों को मात्र क्रीड़ा-कौतुक का रूप न दें। नहीं तो प्रौढ़ होते हुए उनके मस्तिष्क कुरीतियों में जीवित रहने वाले पर्वों को सहेतुक श्रद्धान देने में अपने को विपन्न पाएँगे। आजकल लोगों की जीवनचर्या में एक त्वरा है, क्षिप्रकारिता है, हड़बड़ी है। स्वास्थ्य-शिक्षा के

नियमों में यदि भोजन के एक-एक कवल को 32 बार चबाकर निगलना लिखा है तो आज का अधिकांश व्यक्ति बत्तीस चर्वणों में तो पूरा भोजन ही समाप्तप्रायः कर लेता है।

उदाहरण का आशय यह है कि जीवन बैलगाड़ियों से उतरकर अतिस्वन विमानों में उड़ने लगा है और एक दौड़ लगी हुई है। यही दौड़ देवस्थानों पर जानेवालों के मन में भी घुमड़ रही है। प्रायः लोग समयाभाव में ही पहुँचते हैं और घृतपुष्कल दीपक लेकर लड्डुओं, फलों, नारियलों की बौछार करते हुए भगवान् के दर्शन कर लौट आते हैं। ऐसे लोग यदि विनय-भक्ति का यथावत् संरक्षण न कर रहे हों, तो इसमें क्षिप्रगामी समय को दोष देना उचित है अथवा जाने-अजाने कथंचित् प्रमत्तयोग के शिकार हुए भव्यजनों को? लोक में किसी मान्य या सम्भ्रान्त व्यक्ति के समीप जाते समय लौकिक जन कितनी सावधानी रखते हैं किन्तु मन्दिरों में जिन-बिम्ब के समक्ष उपस्थित होने वाले भीड़ बना लेते हैं, धक्का-मुक्की होती है, बहुत शोर मचाते हैं और भगवान् को निर्वाण-लड्डू भी यथाविधि नहीं दे पाते हैं। जो विश्ववन्द्य हैं, सम्राटों और देव-देवेन्द्रों के मुकुट-मणिकलापों से जिनके नखाग्र रंजित हैं, उनकी भावोपस्थिति का भान करने वाले भव्यजन परमदेव के समक्ष भी विनय-रक्षा नहीं कर पाते। यह शोभनीयता की किस कोटि में आते हैं, यह तीर्थंकर परमदेव के अर्चक ही निर्णय करें।

भगवान् को दीपक अर्पण करती भावनाओं में अशिष्टता की उग्र गन्ध जब मिल जाती है तो वह विनय की

शालीनता के साथ अभद्र हो उठती है। अतिमात्रा में पूरित घृत दीपशरावों में पड़े रहते हैं, वर्तियाँ बुझ चुकी होती हैं और पतंगों के जले-अधजले शव उनमें तैरते रहते हैं। किन्तु त्वराशील श्रावक तो इसे देखता नहीं, उसे अवकाश भी नहीं है। तथापि न देखने से अहिंसा धर्म के देवता के समक्ष होने वाली इस अहिंसा का प्रायश्चित्त नहीं लगेगा क्या? वह घृत आँगन में फैलकर कीच मचा देता है और दीप की (दीपदान की) वास्तविकता को छलता है। यह अनुशासनहीनता है, अविनय है और 'होम करते हाथ जले' की लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाला पुण्यबंध के लिए उद्यत को कथंचित् पुण्येतर बन्ध का कारण भी हो सकता है। वीतराग भगवान् की पूजा दुरितक्षय और पुण्योपचय के लिए उतनी नहीं है जितनी उभय-व्यतिरिक्त मोक्षलब्धि के लिए है। भगवान् के पूजक समवेत स्वर में गाते हैं–

''अर्हत्पुराणपुरुषोत्तम पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि॥''

हे भगवन्! मैं लौकिक प्रयोजनों का प्रार्थी नहीं हूँ। मैं तो आपके समक्ष केवलज्ञान रूप अग्नि में सम्पूर्ण पुण्यों को दग्ध करने उपस्थित हुआ हूँ, क्योंकि पुण्य और पाप दोनों मोक्ष के प्रतिबन्धक हैं। दीप जलाने वाले भी अपने अशेष पुण्यापुण्य कर्मों के दीपकों को ज्ञान-शलाका से जलाने भगवान् के समक्ष उपस्थित हुआ करें तो उनके उद्देश्य मार्ग कितने प्रशस्त न हो जाएँ?

दीपों का यह पर्व जो निर्वाणप्राप्त भगवान् की पूजा से महिमान्वित है, उन्हीं के चिन्तन से तद्गुणलब्धिसौकर्य उपस्थित करनेवाला हो और सम्यक्त्व-परिच्छिन्न ज्ञानदीप को आत्मा में प्रज्वलित कर सके, यही इस महोत्सव का उद्देश्य होना चाहिए।